RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal (RHIMRJ)
Research Paper
Available online at: www.rhimrj.com

कबीर के काव्य में सामाजिक चेतना के विद्रोही स्वर

डॉ0 हसीना बानो

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभागाध्यक्ष, हमीदिया गर्ल्स डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद।

समसामयिक परिवेश में मध्यकाल युग के निर्गुण सन्त कवि कबीरदास जो अपनी अटपटी वाणी को खरे माधुर्य से अलंकृत करने वाले भाषा के डिक्टेटर हैं। आज आधुनिक युग में भी उनकी वाणी उतनी ही सटीक है, जितनी वह मध्य युग में थी। हिन्दी में सन्त कवि जिस विचारधारा को लेकर अपनी वाणियों की रचना में प्रवृत्त हुये उसका मूल स्रोत चौरासी सिद्धो एवं नाथों की रचनाओं में दृष्टिकोण होता है। सन्त मत को पल्लवित करने में चौरासी सिद्धो एवं नव नाथों ने बड़ा ही योग प्रदान किया क्योंकि आन्तरिक साधना की जिस पद्धति का प्रचार सिद्धो एवं नाथों ने किया उसी को विकसित करने का कार्य सन्तों ने आगे चलकर किया। साथ ही वर्ण–भेद, वर्ग–भेद आदि को मिटा कर सम्पूर्ण जातियों, वर्णों एवं निम्न से निम्न कोटि के व्यक्तियों के लिए उपासना, साधना एवं भक्ति को सुलभ बनाने का जो कार्य इन सिद्धो एवं नाथों ने आरम्भ किया था वही कार्य सन्तों द्वारा आगे चलकर सम्पन्न हुआ।

रामानन्द के शिष्य कबीर ने अपनी भाव–विभोर वाणियों द्वारा आध्यात्मिक साधना एवं सामाजिक अभ्युत्थान के प्रति अपने विचार प्रकट किये तथा बाह्याडम्बर, माया–मोह, कनक और कामिनी, मांसाहार, तीर्थटन आदि का विरोध करते हुए जीवन को संयम, दया, क्षमा, संतोष, ईश्वर विश्वास आदि से सम्पन्न बनाने का आग्रह किया है, पारस्परिक भेद–भाव को दूर करने की सलाह दी है और निराकार ब्रह्म की उपासना पर जोर देते हुए मन्दिर–मस्जिद के पाखंडपूर्ण आचार–विचार का घोर विरोध किया है। सभी सन्तों में से 'कबीर' की वाणी सबसे अधिक सशक्त एवं सक्षम जान पड़ती है। कबीर ने तत्कालीन समस्त धर्म–साधनाओं, उपासना–पद्धतियों, साधना–प्रणालियों आदि का गहन अध्ययन करके अपने विचार प्रकट किये। साथ ही वे उच्च कोटि के साधक भी रहे है। इसी कारण उनकी वाणी में अनुभव, ज्ञान, कल्पना तथा साधना का सम्मिश्रण दिखाई देता है और इसीलिए कबीर की वाणी अन्य सन्तों की अपेक्षा कहीं अधिक मार्मिक प्रभावोत्पादक एवं हृदयस्पर्शी जान पड़ती है। कबीर की विशिष्टता का सबसे बड़ा कारण यह है कि कबीर में एक ओर अद्वैतवाद का समावेश है तो दूसरी ओर वे सूफीमत की प्रेम–साधना से भी ओत–प्रोत दिखाई देते हैं और उनमें मुस्लिम एकेश्वरवाद की भावना भी विद्यमान है। ऐसे ही एक ओर वे सिद्धों एवं नाथ–सम्प्रदाय के हठयोग की साधना तथा सहज यानी सिद्धों की 'सहज' भावना से परिपूर्ण दिखाई देते है तो दूसरी ओर रामानन्द की भक्ति–भावना वैष्णव मत से भी पूर्णतया प्रभावित हैं। इतना होने पर भी कबीर ने सभी सम्प्रदायों एवं मतमतान्तरों का सार ही ग्रहण किया है। वे किसी भी एक सम्प्रदाय के बनकर नहीं रहे है। यही एक 'सन्त' की सबसे बड़ी पहचान है और इसमें 'कबीर' खरे उतरे हैं। इसी कारण कबीर को ही सन्त–मत का प्रमुख प्रवर्तक भी माना जाता है। वह सन्त काव्य परम्परा के अग्रगणीय प्रतिनिधि कवि हैं।

कबीर का काव्य सरल एवं सुबोध जनभाषा में मिलता है, परन्तु उसमें स्पष्टता एवं प्रभावोत्पादकता कहीं अधिक है। वह सरलता, सत्यता, व्यवहारिकता एवं स्पष्टवादिता के लिए प्रसिद्ध है। उसमें धार्मिक पाखंडो, सामाजिक कुरीतियों, अनाचारों, पारस्परिक विरोधों आदि को दूर करने की अपूर्व शक्ति है, उसमें समाज के अन्तर्गत क्रान्ति उत्पन्न करने की अद्भुत क्षमता है और उसमें चित्तवृत्तियों को परिमार्जित करने हृदय को उदार करने की अनुपम सामर्थ्य है। इस प्रकार कबीर का साहित्य जन–जीवन को उन्नत बनाने वाला है, मानवतावाद का पोषक है, विश्व–बन्धुत्व की भावना को जाग्रत करने वाला है। विश्व–प्रेम का प्रचारक है, पारस्परिक भेद–भाव को मिटाने वाला है तथा प्राणिमात्र में प्रेम का संचार करने वाला है।

अस्तु! वे एक महान साधक है, उच्च कोटि के सुधारक है, निर्गुण भक्ति के प्रबल प्रचारक है तथा हिन्दी–सन्त काव्य के प्रतिनिधि कवि है। इसी कारण हिन्दी की सन्त–काव्यधारा में उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

कबीर एक ऐसी भक्ति–धारा को प्रवाहित करना चाहते थे, जिसे सभी वर्ग एवं सभी वर्ण के व्यक्ति बिना किसी हिचकिचाहट के अपना सकें। उस समय हिन्दू और मुसलमानों में पारस्परिक वैमनस्य एवं ईर्ष्या–द्वेष अत्यधिक बढ़ रहे थे। अतः कबीर ने अपनी निर्गुण भक्ति का आश्रय लेकर दोनों जातियों की पारस्परिक कटुता एवं वैमनस्य की भावना को दूर करके एक ऐसी सामान्य भक्ति का प्रचार किया, जिसमें राम और रहीम, कृष्ण और करीम, महादेव और मुहम्मद की एकरुपता स्थापित करके एक ईश्वर की उपासना पर ज़ोर दिया गया था और ईश्वर की एकता के आधार पर मानव मात्र की एकता का प्रचार किया गया था।

कबीर ने मुसलमानों के एकेश्वरवाद तथा हिन्दुओं के बहुदेववाद के विरुद्ध एक ईश्वर का प्रचार किया, जो घट–घट वासी है, सर्वत्र रमा हुआ है तथा निर्गुण और निराकार है। इसीलिए कबीर ने 'मुसलमान का एक खुदाई, कबीर का स्वामी रहा समाई' कहकर

2014, RHIMRJ, All Rights Reserved *ISSN:* 2349-7637 (Online)

मुसलमानों के उस एकेश्वरवाद का विरोध किया है, जिसके अनुसार खुदा को बन्दे से पृथक् सातवें आसमान पर बैठा हुआ माना जाता है और **'अपरंपार के नाउँ अनंत' तथा 'जाके मुख माथा नहीं, नाही रूप–कुरूप'** आदि कहकर हिन्दुओं की बहुदेवोपासना का विरोध करते हुए एक ईश्वर के अनेक नाम बताए है तथा उसे निर्गुण एवं निराकार बताया है। इस प्रकार कबीर ईश्वर सम्बन्धी भावना में एकता की स्थापना करते हुए एक निराकार ईश्वर की उपासना पर जोर देते है। वे ऐसे स्मरण का विरोध करते है, जिसमें माला तो हाथ में फिरती है और जीभ मुख में फिरती है, परन्तु मन दस दिशाओं में घूमता रहता है। वे तो चाहते है कि स्मरण ऐसा होना चाहिए कि अपने आराध्य देव का स्मरण करते–करते साधक उसी का रूप ग्रहण कर लें। उसमें अहंकार न रहे और उसकी आत्मा उद्‌बुद्ध होकर परमात्मा का साक्षात्कार कर लें, जिससे उसे अपने अन्तर्गत तथा बाहर सर्वत्र उसी एक ब्रह्म का रूप दिखाई दे।

कबीर के समय में उत्तरी भारत के अन्तर्गत हिन्दु और मुलसमान दो बड़ी जातियाँ निवास करती थी। इन दोनों में अपने–अपने आचार–विचारों, रीति–रिवाजों, सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं आदि के बारे में दृढ़ता एवं कट्‌टरता विद्यमान थी, जिसके परिणामस्वरूप दोनों जातियाँ परस्पर एक–दूसरे से लड़ती रहती थी, द्वेष एवं वैमनस्य रखती थी और कोई भी किसी से समझौता करने को तैयार नहीं थी। उस समय हिन्दु–धर्म और इस्लाम–धर्म के ठेकेदार भोली–भाली जनता को बहका कर अनेकानेक पाखंडो, ब्रह्मचारों, अन्धविश्वासों एवं मिथ्या आडम्बरों में फंसायें रखते थे और अपने–अपने मत की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए पारस्परिक भेद–भाव एवं ईर्ष्या–द्वेष को प्रश्रय देते थे। इन संकीर्ण विचारों के कारण उस समय समाज का सन्तुलन बिगड़ रहा था, कुरीतियों एवं कुप्रथाओं का बोलबाला था, धार्मिक अव्यवस्था बढ़ती जा रही थी, सामाजिक विषमता देश में घर कर रही थी और रूढ़िवादी विचाराधारा पनप रही थी। अतएव उस समय किसी ऐसे महात्मा या धर्म–प्रवर्तक अथवा सामाजिक नेता की आवश्यकता थी, जो दोनो धर्मों की बुराइयों का अध्ययन करके ऊपर उठकर बुराइयों को दूर कर सके, हिन्दु और मुलसमान दोनों में समता स्थापित कर सके और सामाजिक अव्यवस्था को दूर करके समाज में सुन्दर एवं सुदृढ़ व्यवस्था स्थापित कर सके। ऐसे ही संक्रान्ति–युग में महात्मा कबीर का प्रादुर्भाव हुआ और उन्होंने तत्कालीन अव्यवस्था, आडम्बरप्रियता, मिथ्यावादिता, अहंकार–प्रियता, रूढ़िवादिता तथा मिथ्या धार्मिकता का भली प्रकार अध्ययन करके उन्हें दूर करने का बीड़ा उठाया।

कबीर के समय में हिन्दू–धर्म एवं हिन्दू–समाज के अन्तर्गत पौराणिक धर्म सम्बन्धी परम्परायें प्रचलित थी, जिसके फलस्वरूप हिन्दू जनता पौराणिक आचार–विचार सम्पन्न धार्मिक क्रियाओं में सतत लीन रहीं आती थी। उसमें पूजा–पाठ, यज्ञानुष्ठान, कर्म–कांड आदि का बोलबाला था। इन कार्यों के द्वारा पुराण–पंथी पंडित एवं कर्मकांडी ब्राह्मण अपने यजमानों को ठगते रहते थें। वे तत्वज्ञानी न होकर उल्टे–सीधे कर्म कराने वाले अशिक्षित एवं अर्द्धशिक्षित थे तथा बाह्याचरों में जनता को लीन रखकर अपने उल्लू सीधा करते थे। कबीर ने हिन्दू–धर्म के उक्त मिथ्या आडम्बर एवं पाखण्ड का डटकर विरोध किया, हिन्दू–धर्म के ठेकेदार इन पंडितों को कसाई कहकर इनकी पोल खोलना प्रारम्भ किया तथा उनके कुकर्मो, नीच करतूतों, मिथ्या कृत्यों आदि का उल्लेख करके उन्हें जनता का कट्‌टर शत्रु घोषित किया।

अरे इन दोहुन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करै बड़ाई गागर छुवन न देई।
बेस्या के पायन–तर सोवै यह देखो हिंदुआई।।
मुसलमान के पीर–औलिया मुर्गी मुर्गा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहै घरहिं में करै सगाई।।

उस समय हिन्दुओं में विभिन्न सम्प्रदाय एवं अनेक मत–मतान्तर प्रचलित थे। सभी दुराचारों में लीन थे, मांसाहारी थे, मदिरा पान करते थे, व्यभिचारी थे, अनाचारी थे और अपनी–अपनी धुन में मस्त रहकर दूसरों को दोषी बताया करते थे। कबीर ने उन सभी गतावलम्बियों की विभिन्न क्रियाओं एवं उपासना–पद्धतियों का उल्लेख करके उनके कुकृत्यों का पर्दाफाश किया, उनके मिथ्या–अहंकार एवं मिथ्याडम्बर का विरोध करके जनता को उनसे सचेत एवं सावधान रहने का आग्रह किया। कबीर ने इन सभी साधु–सन्यासियों, योगी, ऋषि–मुनियों आदि के आडम्बरों का विरोध किया, **'माला पहर्‌यॉ कुछ नहीं काती मन के साथ'** कहकर उनके माला धारण करने को मिथ्या बताया। **'मूँड़ मुड़ावत दिन गए अजहूँ न मिलिया राम'** कहकर उनके केश मुड़ाने को मिथ्या बताया, **'नांगे फिरें जोग जे होई बन का मृग मुकति गया कोई'** कहकर उनके नंगे रहकर योग–साधना करने का मजाक उड़ाया। इतना ही नहीं, कबीर ने हिन्दुओं में फैली हुई मिथ्या परम्पराओं का भी खुलकर विरोध किया है। इसीलिए कबीर ने **'पाहन पूजा हरि मिलैं तो मैं पूजूँ पहार'** कहकर मूर्ति–पूजा का निषेध किया।

इस तरह कबीर ने बड़ी निर्भीकता एवं निडरता के साथ हिन्दुओं के पूजा–पाठ, व्रत उपासना तीर्थाटन, विभिन्न धार्मिक कृत्यों आदि का विरोध करके इन मिथ्याचारियों को फटकार और समाज में व्याप्त अन्ध विश्वास, बाह्याचार, जड़ता, रूढ़िग्रस्तता, एवं मिथ्याडम्बर के विरोध में आवाज़ उठाई।

हिन्दूओं की ही भॉति मुसलमानों में मिथ्या आचार–विचार एवं बाह्याडम्बरों का बोलबाला था। इस्लाम धर्म के अनुयायियों को कबीर ने प्रायः तुर्क नाम से अभिहित किया है और इस मत के ठेकेदारों को काज़ी, मुल्ला, शेख, दरवेश आदि नामों से पुकारा जाता

है। इनमें से दिखावे के लिए हज करने वालों को शेख कहा जाता है, नमाज़ पढ़ने वाले, झूठी बन्दगी करने वाले तथा खुदा की इबादत करते हुए भी अपनी जिह्वा के स्वाद के लिए गोहत्या करने वाले को 'काजी' कहा है, मस्जिद पर चढ़ कर 'अजॉ' देने वाले तथा रोज़ा रखने वालो को 'मुल्ला' कहा है और 'कुरान' पढ़कर जनता को बहकाने वालो को 'मौलवी' बताया है। इन सभी को धर्म के वास्तविक ज्ञान से रहित कहकर कबीर ने इन्हें मिथ्याचारी, मांसाहारी, व्यभिचारी तथा भोली–भाली जनता के प्रवचक सिद्ध किया है। इसी कारण कबीर ने **'दिन भर रोज़ा धरत हो, रात हनत हो गाय'** कहकर रोज़े का मज़ाक उड़ाया है। बकरी, मुर्गी किन फुरमाया किसके हुकुम तुम छुरी चलाया' कहकर इनके पशु–वध का विरोध किया, **'कॉकर पाथर जोरि कैं मसजिद लयी चुनाइ, ता चढ़ि मुल्ला बॉग दे का बहिरा हुआ खुदाइ'** कहकर 'अजान' पर करारा व्यंग किया है। **'जो रे खुदाय मसीत बसतु है, अवर मुलुक किहि केरा'** कहकर मस्जिद को केवल खुदा का घर मानने वाले पर करारा व्यंग किया है, **'जोरी करि जिवहै करि करते है जो हलाल'** कहकर इसके 'हलाल' की खिल्ली उड़ाई है, **'काजी कौन कतेब बखानै'** कहकर काज़ी के ऊपर चोट की है तथा **'हौं तौ तुरक किया किर सुंनति और तिसौं का कहिए'** कहकर 'सुन्नत' पर करारा व्यंग किया है।

कबीर ने छुआछूत का विरोध करके ऊँच–नीच की भावना को बुरा बताया है और हिन्दुओं में व्याप्त वर्ण–व्यवस्था की खिल्ली उड़ाकर मानव–मात्र की एकता एवं समानता पर जोर दिया हैं इतना ही नहीं **'सो हिन्दू सो मुसलमान जाका दुरूस रहे ईमान'** कहकर कबीर ने स्पष्ट घोषणा की है कि जिसका ईमान दुरुस्त है, जो अपने धर्म पर सत्य के साथ आरूढ़ है वहीं हिन्दू या मुसलमान है। पाखंडी एवं मिथ्याचारी व्यक्ति ने हिन्दू है और न मुसलमान। इसलिए पाखंड एवं मिथ्याडम्बरों का विरोध करके कबीर ने सत्य एवं शुद्ध आचरण का भाव पैदा किया है। 'एक ज्योति से सब उत्पन्न, कौन बाम्हन कौन सूदा' कहकर हिन्दू मात्र की समता पर जोर दिया है, **'भूला भूमि परै जिनि कोई, हिन्दू तुरूक झूठ कुल दोई'** कहकर हिन्दू और मुसलमान दोनो की एकता स्थापित की है तथा **'हिन्दू–तुरक की एक राह है, सतगुरू इहै बतायी'** कहकर दोनो में अभिन्नता का भाव उत्पन्न किया है।

अतः कबीर ने सम्पूर्ण समाज में व्याप्त वैषम्य का विरोध करके उसमें साम्य स्थापित करने का प्रयत्न किया है। परोपकार, सेवा, क्षमा, दान, धैर्य, अहिंसा आदि का प्रचार करके जन–जीवन में शुद्ध आचरण एवं सात्विकता की वृद्धि पर जोर दिया है, मिथ्या आडम्बरों एवं पाखण्डों का विरोध करके आन्तरिक साधना एवं अन्तःकरण को शुद्धि के महत्व का प्रतिपादन किया है, पशु–वध या गो–वध का विरोध करके जन–साधरण में अहिंसा एवं सहिष्णुता का प्रचार किया है, व्रत, उपवास आदि का विरोध करके साधना एवं सरल जीवन व्यतीत करने का प्रचार किया है, सामाजिक एवं धार्मिक विद्रूपताओं के प्रति आक्रोश व्यक्त करके समाज को सुव्यवस्थित करने का प्रयत्न किया है, धर्म एवं ईश्वर की एकता का प्रतिपादन करके हिन्दू–मुस्लिम ऐक्य स्थापित किया है, निर्गुण एवं निराकार ब्रह्म की उपासना का प्रचार करके जनता में व्याप्त कटुता एवं विषमता को दूर करते हुए मानव–मात्र के हृदय में आध्यात्मिकता का बीजारोपण किया है तथा तत्कालीन समाज एवं धर्मों की तीक्ष्ण एवं कटु आलोचना करके जनता को सत्य–मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया है। इस तरह कबीर ने अपनी मर्मस्पर्शी वाणी द्वारा तत्कालीन धार्मिक पाखण्डों एवं सामाजिक कुरीतियों को दूर करके जनसाधारण को सरल–जीवन, सत्याचारण , सात्विक व्यवहार, पारस्परिक एकता, समता आदि की ओर उन्मुख करने का जो सराहनीय कार्य किया है, इसी के परिणामस्वरूप वे एक उच्च कोटि के समाज–सुधारक कहलाते हैं।

कबीर एक कवि होने की अपेक्षा उच्च कोटि के साधक थे, सत्य के उपासक थे और ज्ञान के अन्वेषक थे। इसलिए उन्होंनें काव्य के लिए काव्य नहीं लिखा, अपितु सत्य एवं ज्ञान का निरूपण करने के लिए अथवा उस परम पुरुष का सन्देश देने के लिए काव्य को अपना माध्यम बनाया है। यही कारण है कि कबीर ने जो कुछ कहा है उसमें गहन अनुभूति के साथ–साथ सत्यान्वेषण एवं तथ्यों का ही बाहुल्य है, उनकी वाणी में साहित्य के नवरसों की अपेक्षा आध्यात्मिकता रस का प्राधान्य है और उनका समस्त साहित्य एक जीवन्मुक्त सन्त के गूढ़ एवं गम्भीर अनुभवों का भण्डार है, कबीर के उस गुरू–गम्भीर वाणी में कवित्त उमड़ रहा है और समसामयिक समस्याओं से जूझते हुए समाधान प्रस्तुत किया है। समाज में फैला अज्ञानता को दूर करने का प्रयास किया है।

कबीर के साहित्य में उच्च कोटि के समन्वयवाद की झांकी मिलती है, क्योंकि कबीर ने तत्कालीन जनजीवन में व्याप्त पारस्परिक वैष्मय को दूर करके उसके स्थान पर साम्य एवं ऐक्य स्थापित करने का बड़ा ही सराहनीय कार्य किया है। इसी कारण कबीर के साहित्य में हिन्दू–धर्म तथा इस्लाम–धर्म में समता स्थापित करने का प्रयत्न हुआ है। हिन्दू और मुसलमानों में, ब्राह्मणों और शूद्रों में, ज्ञानी और अज्ञानियों में, कर्मकाण्डी और वैरागियों में, भक्तों और योगियों में, ग्रहस्थी और सन्यासियों में तथा धर्मों और विधर्मियों में समन्वय स्थापित करते हुए ऐतिहासिकता एवं आध्यात्मिकता में, प्रवृत्ति एवं निवृत्ति में, सुरति एवं निरति में, बुद्धि एवं हृदय में, गृहस्थ एवं वैराग्य में, भक्ति और ज्ञान में, श्रेय और प्रेम में ब्रह्मा और जीव में, ब्रह्मा और जगत में, लोक और वेद में, साधना और अनुभूति में, यौगिक क्रिया और नित्य–नैमित्तिक कर्मों में, आन्तरिक साधना एवं ब्रह्माचारों में तथा त्याग और भोग में अद्भुत समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की गई है। कबीर के हृदय में सच्चाई एवं अनुभूति का प्राधान्य है, जिसे कबीर ने प्रतीकों के माध्यम से बड़ी सजीवता एवं मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है।

यद्यपि कबीर एक संदेश देने के लिए ही यहां आए थे, तथापि उन्होंने अपनी उर्वर प्रतिभा द्वारा उस संदेश को इतना मर्मस्पर्शी एवं हृदयग्राही बना दिया है कि कबीर की वाणी में सर्वसाधारण को एक अलौकिक आनन्द की उपलब्धि होती है। उनके काव्य की स्वाभाविकता, सरलता एवं भावात्मकता ने सभी भारतीयों को आकृष्ट किया है। पंडित और काज़ी, अवधू और जोगिया, मुल्ला और

2014, RHIMRJ, All Rights Reserved

ISSN: 2349-7637 (Online)

मौलवी– सभी उनके व्यंग्य से तिलमिला जाते थे। अत्यन्त सीधी भाषा में वे ऐसी चोट करते है कि चोट खानेवाला केवल धूर झाड़ के चल देने के सिवा कोई रास्ता ही नहीं पाता। यद्यपि कबीर ने कहीं काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की तथापि उनकी आध्यात्मिक रस की गगरी से छलके हुए रस से काव्य की कटोरी में भी कम रस इकट्ठा नहीं हुआ है।

कबीरदास समाज–सुधारक के रूप में सर्व–धर्मसमन्वयकारी के रूप में, हिन्दू–मुस्लिम–ऐक्य–विधायक के रूप में, विशेष सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाता के रूप में दार्शनिक के रूप में भी उनकी चर्चा कम नही है।

कबीर ने ऐसी बहुत सी बातें की है जिनसे अगर उपयोग किया जाय तो समाज–सुधार में सहायता मिल सकती है, पर उनको समाज–सुधारक समझना गलती है। वस्तुतः वे व्यक्तिगत साधना के प्रचारक थे। समष्टि–वृत्ति उनके चित्त का स्वाभाविक धर्म नहीं है। वे व्यक्तिवादी थे। सर्व–धर्म–समन्वय के लिए जिस मजबूत आधार की जरूरत होती है वह वस्तु कबीर के पदों में सर्वत्र पायी जाती है। परन्तु आजकल सर्व–धर्म समन्वय से जिस प्रकार का भाव लिया जाता है, वह कबीर में एकदम नहीं था। सभी धर्मों के बाह्य आचारों और अन्तर–संस्कारों में कुछ न कुछ विशेष देखना और सब आचारों, संस्कारों के प्रति सम्मान की दृष्टि उत्पन्न करना ही उद्देश्य है। कबीर इनके कठोर विरोधी थे। उन्हें अर्थ–हीन आचार पसन्द नहीं थे, चाहे वे बड़े से बड़े आचार या पैगम्बर के ही प्रवर्तित हो या उच्च से उच्च समझी जाने वाली धर्म पुस्तक से उपदिष्ट हों। बाह्याचार की निरर्थक पूजा और संस्कारों की विचारहीन गुलामी कबीर को पसन्द नहीं थी। वे इनसे मुक्त मनुष्यता को ही प्रेमभक्ति का पात्र मानते थे। परन्तु वे मनुष्यमात्र को समान मर्यादा का अधिकारी मानते थे, जातिगत, कुलगत, आचारगत श्रेष्ठता का उनकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं था। सम्प्रदाय–प्रतिष्ठा के भी वे विरोधी जान पड़ते है। परन्तु फिर भी विरोधाभास यह है कि उन्हें हजारों की संख्या में लोग सम्प्रदाय–विशेष के प्रवर्तक मानने में ही गौरव अनुभव करते है।

जो लोग हिन्दू–मुस्लिम एमता के व्रत में दीक्षित है वे भी कबीरदास को अपना मार्गदर्शक मानते है। यह उचित भी है। राम–रहीम और केशव–करीम की जो एकता स्वयं–सिद्ध है उसे भी सम्प्रदाय–बुद्धि से विकृत मस्तिष्क वाले लोग नहीं समझ पाते। कबीरदास से अधिक जोरदार शब्दों में इस एकता का प्रतिपादन किसी ने नहीं किया। पर जो लोग उत्साहाधिक्यवश कबीर को केवल हिन्दू–मुस्लिम एकता का पैगम्बर मान लेते है वे उनके मूल–स्वरूप को भूल कर उसके एक–देशमात्र की बात करने लगते है। ऐसे लोग यह देख कर क्षुब्ध हो कि कबीरदास ने दोनों धर्मों की ऊँची संस्कृति या दोनों धर्मों के उच्चतर भावों में सामंजस्य स्थापित करने की कहीं भी कोशिश नहीं की और सिर्फ यहीं नहीं, बल्कि उन सभी धर्मगत विशेषताओं की खिल्ली ही उड़ायी है, जिसे मज़हबी नेता बहुत श्रेष्ठ धर्माचार कहकर व्याख्या करते हैं, तो कुछ आश्चर्य करने की बात नही है। दोनों धर्म समानरूप से भगवान में विश्वास करते है और यदि सचमुच ही आदमी धार्मिक है तो इस अमोघ औषधि का प्रभाव उस पर पड़ेगा ही। अपथ्य है बाह्य आचारों को धर्म समझना, व्यर्थ कुलाभिमान, अकारण ऊँच–नीच का भाव। कबीरदास की इन दोनो व्यवस्थाओं में गलती नहीं है और अगर किसी दिन हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता हुई तो इसी रास्ते से हो सकती है।

भक्ति–तत्व की व्याख्या करते–करते उन्हें उन बाह्याचारों के जंजालों को साफ करने की जरूरत महसूस हुई है जो अपनी जड़ प्रकृति के कारण विशुद्ध चेतन–तत्व की उपलब्धि में बाधक है! यह बात ही समाज–सुधार और साम्प्रदायिक ऐक्य की विधात्री बन गयी है। कबीरदास जी एक मामूली शक्तिमत्ता की परिचायिका नहीं है।

कबीर के समय में सर्वाधिक उथल–पुथल सामाजिक जीवन में व्याप्त थी वर्ण व्यवस्था और आश्रय धर्म के आधार पर संघटित ब्राह्मण समाज–व्यवस्था का ढांचा लड़खड़ा गया था। धर्म के नाम पर बाह्याचार और आडम्बर हिन्दुओं–मुसलमानों दोनों में बढ़ रहा था। मुसलमानों में भी फकीरों, पीरों और मकबरों की पूजा होनें लगी थी। मुसलमानी धर्म स्वीकार करने वाले हिन्दुओं की विचित्र स्थिति थी। बाहर से आए हुए मुसलमान उन्हें सम्मान नहीं देते थे और हिन्दू उन्हें घृणा करते थे। देश के पूर्वी और उत्तरी भागों में कुछ जातियां ऐसी थी जो न हिन्दू थी न मुसलमान। उनकी निष्ठा न वर्ण व्यवस्था में थी और न मुसलमानों के धर्मचार में। स्त्रियों की दशा सबसे खराब थी। सामान्य नारी की कोई सामाजिक मर्यादा न थी।

सबसे बड़ी बात यह थी कि इन सभी धर्म–साधनाओं में बाह्याडम्बर आ गया था। सामान्य जनता इन सभी को आदर देती थी। जनता का बौद्धिक स्तर बहुत सामान्य था। उसमें अनेक प्रकार के अंध–विश्वास प्रचलित थे। वाह टोना–टोटका, शकुन–अपशकुन, भूत–प्रेत, झाड़–फूक, तंत्र–मंत्र और जादू–मंतर के चक्कर में पड़ी रहती थी। उसमें न राष्ट्रीय भावना थी न राजनीतिक चेतना। धर्म के नाम पर वह आवश्य प्राण उत्सर्ग कर सकती थी। तीर्थ, व्रत, नियम–संयम, उपवास एवं पर्व–त्योहार के साथ ही अनके प्रकार के संस्कार जनता में प्रचलित थे। इनका नियमपूर्वक पालन करता ही धर्म समझा जाता था। सब मिला कर कबीरयुगीन समाज गतिशील नहीं था। उस समय की जीवन चेतना विश्वास प्रधान, रूढ़िग्रस्त, धर्मकेन्द्रित, संकीर्ण, प्रेरणारहित और नैतिकता के आग्रह से पूर्ण थी।

मध्यकालीन कवियों में आज निर्विवाद रूप से 'कबीर' को विशेष महत्व दिया जा रहा है। इसका मुख्य कारण धार्मिक रूढ़ियों एव अंधविश्वासों के प्रति उनका विद्रोही स्वर है। मध्यकाल में कबीर अकेले कवि है, जिन्होंने जीर्ण परम्पराओं का खुलकर विरोध किया है। पहले भी लोक चेतना में कबीर की प्रतिष्ठा कम नहीं थी। नाभादास ने 'भक्तमाल' में उनका आदरपूर्वक स्मरण किया है। लोकोक्तियों में भी 'तुलसी' और 'सूर' के बाद 'कबीर' का ही महत्व स्वीकार किया गया है। इस महत्व का कारण उनकी दृढ़ आस्था,

निर्भीक व्यक्तित्व और अविचल भक्ति रही है। आज 'कबीर' को जो महत्व दिया जा रहा है, उसका कारण कुछ दूसरा है। आज का कवि और साहित्यकार कबीर की मानसिकता को अपनी काव्य–संवेदना के काफी निकट पाता है।

उन्होनें किसी की झूठी खुशामद नहीं की। योगी हो या पंडित, मुल्ला हो या मौलवी, पीर हो या मुरशिद, शैव हो या शाक्त, हिन्दू हो या मुसलमान उन्होनें सभी की दुर्बलताओं पर समान भाव से प्रहार किया। वे सच्चे विद्रोही थे। उनका विद्रोह अंधविश्वास, मिथ्याडम्बर, जातिगत भेदभाव तथा धार्मिक एवं साम्प्रदायिक संकीर्णता के विरुद्ध था। वे सहज जीवन के समर्थक थे और मनुष्यमात्र की एकता में विश्वास करते थे। दीन–हीन जनता एवं उपेक्षित मानव समुदाय के प्रति उनमें अपार सहानुभूति थी। वैभव, शक्ति और सत्ता के प्रति उनके मन में तनिक भी आकर्षण नहीं था। वे तो सब कुछ छोड़कर, सारी वासनाओं और एश्वर्यों को जला कर जीवन–पथ पर आगे बढ़े थे। उनका भीतर–बाहर एक था। उनके साथ वहीं चल सकता था, जिसने माया–मोह के सारे बंधनों को काटकर फेक दिया हो, जिसने वैभव–विलास की वासनाओं को जला कर राख कर दिया हो। वे जिस सहज जीवन के आकांक्षी थे वह कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता था। जिन्होनें दूसरों को मुक्त कराने का दायित्व ले रखा था वे सबसे अधिक बंधन–ग्रस्त थे। कबीर का सहज निर्मल मन समाजव्यापी मिथ्याचार को देखकर विद्रोह कर उठा। उनकी आत्मा तड़प उठी उनकी कविता में उनकी आत्मा की तड़प स्पष्ट लक्षित होती है।

कबीर की कविता उनके सहज जीवन–बोध और तत्कालीन समाजव्यापी मिथ्यायचार के बीच उत्पन्न द्वन्द्व एवं तनाव की कविता है। कबीर की कविता में लक्षित होने वाला यह तनाव ही वह बिन्दु है, जहां आज का कवि अपने को कबीर के साथ खड़ा पाता है। कबीर की निर्भीकता, दृढ़ता, यथार्थ–दर्शिता, मस्ती, फक्कड़पन, विवेकशीलता, अभेद–दृष्टि और चारित्रिक निर्मलता आदि अन्य विशेषतायें भी आज कवि और साहित्यकार के लिए विशेष आकर्षण अेर महत्व रखती है। वह जब देखता है कि अकेला एक व्यक्ति निर्भय होकर पंद्रहवी शती की सम्पूर्ण धर्म एवं समाज व्यवस्था को चुनौती दे रहा है, तो उसके मन में उसके प्रति आदर का भाव उत्पन्न होता है। मस्ती, फक्कड़ाना स्वभाव और सब–कुछ को झाड़–फटकार कर चल देने वाले तेज ने कबीर को हिन्दी–साहित्य का अद्वितीय व्यक्ति बना दिया है।

आज का मानव जीवन की समस्या का बौद्धिक समाधान ढूंढ़ता है। यह संसार उसके लिए मृग–मरीचिका नही है, वरन् एक वास्तविकता है। प्रकृति के रहस्य उसके लिए दैवी लीला नहीं है वरन् कार्य–कारण परम्परा से बद्ध भौतिक घटना प्रवाह है, जिन्हें अपने अनुकूल बनाया जा सकता है। वह जानता है कि मनुष्य की सामाजिक, आर्थिक स्थिति उसके पूर्वजन्म के कर्मो का अवश्यंभावी परिणाम नहीं है, वरन् इसके मूल में अधिकार एवं शक्तिसम्पन्न उच्चवर्गीय मानवों का स्वार्थभाव ही कारण रूप में विद्यमान है। वह जानता है कि सामाजिक ढांचा परिवर्तनशील है। शासन व्यवस्था चुनौती से परे नही है। सत्ता का स्रोत जनता है न कि सामन्त या बादशाह। कबीर के सामने यह सत्य नहीं था। वे एक आस्थावादी व्यक्ति थे। गुरू और ईश्वर में उन्हें अखण्ड विश्वास था। वे मनुष्य की नियति को ईश्वरेच्छा का परिणाम मानते थे। उनका विद्रोह आस्तिक विद्रोह था। उन्होनें समाज व्यवस्था को उस बिन्दु पर चुनौती दी थी जहां उन्होनें उसे ईश्वरेच्छा के विपरीत अनुभव किया था। कबीर ने कही राजसत्ता को चुनौती नहीं दी है। आर्थिक उत्पीड़न के प्रति आक्रोश व्यक्त नहीं किया है। मात्र धार्मिक सामाजिक रूढ़ियों एवं विकृतियों को ही उन्होनें लक्ष्य बनाया है।

कबीर की विद्रोहात्मक प्रकृति, यथार्थपरक दृष्टि, प्रखर व्यक्तित्व, निर्भीक एवं ओजस्वी स्वर, अभेदात्मक जीवन–दर्शन तथा सामाजिक–धार्मिक विकृतियों को लेकर मन के भीतर बना रहने वाला तनाव आदि ऐसे बिन्दु है, जो सम–सामयिक व्यवस्था में सहायक हैं 'कबीर' अपने समय के सच्चे विद्रोही थे। वे हाथ में लुकाठी लेकर निकल पड़े थे। कबीर पूरे समाज के बीच अकेले अपनी आस्था के बल पर अडिग खड़े थे और निर्भय होकर प्रहार कर रहे थे। इस दृष्टि से वे आज की विद्रोही पीढ़ी को नेतृत्व प्रदान कर सकते है। आज के कवि में यह कहने का साहस नही है कि–

'हम घर जारा आपनां, लिए मुराड़ा हाथि।
अब घर जालौ तास का, जो चलै हमारै साथि।।

कबीर का अध्ययन करने वाले व्यक्ति प्रायः उनको विभिन्न धर्मो का समन्वयकारी सुधाकर मानते है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस सन्दर्भ में सही प्रश्न उठाया है कि कबीर जैसा क्रान्तिकारी व्यक्ति कबीर अपने मार्ग पर विभिन्न धर्मो के आचार–विचार, मत–संस्कारों को समन्वय स्वीकार कर नहीं चलते। वह समस्त बाह्यचारों के जंजालों और संस्कारों को विध्वंस करने वाले व्यक्ति है! कबीर। कबीर की समन्वय दृष्टि समस्त धर्म–मतों में निहित व्यापक मानवीय मूल्यों के स्वीकार पर प्रतिष्ठित है। इस दृष्टि से सभी धर्म–मतों के आचारो तथा कर्मकाण्डों का खंडन करते है। उनके मन में मनुष्य की परिकल्पना व्यापक मूल्यों के आधार पर है और इस अखंड विश्वास के सहारे साहस के साथ उन्होने समस्त धार्मिक विधि–विधान को अस्वीकार कर मनुष्य को सहज मूल्यों पर प्रतिष्ठित किया है। यह वह मानव–मिलन की भूमिका है जिसकी प्रतिष्ठा के लिए कवि को जाति, कुल, धर्म–मत, संस्कार, सम्प्रदाय, विश्वास तथा शास्त्र आदि के भ्रमजाल को छिन्न–भिन्न करना पड़ा। मूल्यों के सांस्कृतिक समन्वय की स्थिति में ही मानव समाज के बीच से अशान्ति, हिंसा, भ्रष्टाचार और आपाधापी दूर हो सकती है और कबीर इस समन्वय भावना से प्रेरित होकर खंडन और विरोध के मार्ग से गुजरे है।

2014, RHIMRJ, All Rights Reserved

ISSN: 2349-7637 (Online)

कबीर ने मानवीय धर्म के आधार पर अपनी प्रेम–साधना के मार्ग पर चलने के लिए विभिन्न धर्म–सम्प्रदायों में प्रचलित ऐसे कर्म–कांडों तथा आचारों का विरोध किया है जो पाखंडवत हो गए है। सामाजिक अपराधों को करने वाला व्यक्ति तीर्थ–यात्रा करता है, यह उसी प्रकार है जैसे ज्ञान के बिना घाट के बीच डूब जाना। जप–तप, नियम–संयम और पूजा–अर्चना करके भी व्यक्ति जीवन का सही मार्ग नहीं पाता। मनुष्य संसार के अंधेरे कुहासों में भटकता है और जीवन के सत्य को नहीं पाता। इस भटकाव में हिन्दू मूर्ति–पूजा करके और तुर्क हज जाकर जीवन गवां देता है। इसी प्रकार अनेक वेश–धारण कर व्यक्ति भटकते है और वेद का पाठ तथा धन–सम्पदा को संचित कर जीवन व्यर्थ गवांते है। कबीर ऐसे कर्मकांडों की अपेक्षा प्रेम–साधना के लिए, जैसा हम देखेंगे, मूल्यों की भूमिका स्वीकार करते है। उनका कहना है **'जिसका दुरूस रहे ईमान'** वही सच्चा धार्मिक हिन्दू या मुसलमान हैं आगे कबीर घर और वन को समान मान कर चलते है, क्योंकि उनकी दृष्टि में व्यक्ति के लिए मन को जीतना और विषयों से निरपेक्ष रहना अपेक्षित है। वह बार–बार इस बात पर बल देते है कि ब्राह्मणों के द्वारा एकादशी का व्रत करना अथवा काज़ी के द्वारा रमज़ान में रोज़ा रहना निरर्थक है। अगर खुदा मस्ज़िद में रहता है, तो यह सारा संसार किसका है? इसी प्रकार अगर राम तीर्थ तथा मूर्ति में निवास करता है तो अन्यत्र उसे कहा देखा जाए। और यह भी कहना अर्थ रखता है कि पूर्व दिशा में हरि का निवास है और पश्चिम में अल्लाह है। वस्तुतः राम और रहीम हृदय में निवास करते है और उनकी वहीं खोज करनी होगी। कबीर कर्म पर बल देते है, क्योंकि जीवन को ठीक दिशा देने के लिए सत्कर्म अपेक्षित है। संसार के लोग लोक–लज्जा से सत्य का निर्वाह नहीं करते और कंचन को छोड़ कांच को ग्रहण करते है अर्थात् जीवन के आदर्शो की उपेक्षा करते है। वस्तुतः साधु जीवन महत्वपूर्ण है, जिसमें व्यक्ति गुणों को अपनाकर साधना के पथ पर विकास करता है। फिर लंबे केश धारण करना या सिर मुड़ाना कोई अर्थ नही रखता। बाहर वस्त्रों का आडम्बर धारण करने से क्या लाभ? यदि मन कुप्रवृत्तियों में संलग्न है। कबीर कहते है कि 'अगर पाहन के पुतले को कतार मान कर पूजा की जाती है, तो इस भरोसे पर रहने वाला व्यक्ति कालीधार मंझधार में डूबता हैं कभी वह व्यंग्य भी करते है, 'मुल्ला मिनार पर चढ़ कर बांग देता है क्या अल्लाह बहरा है जो तु उसे बांग देकर पुकारता है? वह तो हृदय के अन्दर ही है।' इसी प्रकार 'चंचल चित लेकर तीर्थ जाने वाले व्यक्ति का एक भी पाप नहीं कटता, बल्कि उसके मन पर दस और लद जाते है।' इन सारे आचारों को वह सेमर के फूल के समान मानता है, जिनसे आशा लगाने से निराशा ही हाथ आती है। हम देखते है कबीर के प्रखर व्यक्तित्व को इस प्रकार अभिव्यक्ति मिली है, क्योंकि कर्म–कांड तथा विभिन्न आचारों की निरर्थकता के माध्यम से वह मानवीय जीवन में मूल्यों को स्वीकार करते हैं।

कबीर ने सांसारिक जीवन के व्यापक क्षेत्र को दृष्टि में रख कर मानवीय मूल्यों का निरूपण किया है। साथ ही अपने समाज के जीवन पर भी निरन्तर विचार किया है, और उसकी असमानताओं, असंगतियों तथा अन्यायपूर्ण व्यवहारों की कटु आलोचना की है। उनकी दृष्टि से जाति–पाति का भेद–भाव सामाजिक भेद–भाव है, वस्तुतः सभी प्राणी परम तत्व रूप है। उनके अनुसार जीवन के लिए मानवीय मूल्यों का ही महत्व है।

सन्दर्भित सूची–

[1] कबीर – माचवे प्रभाकर

[2] मानव धर्म के प्रेरक संत कबीर – हेम भटनागर

[3] कबीर–चिंतन – डॉ0 ब्रज भूषण शर्मा

[4] कबीर की सौन्दर्य भावना– डॉ0 ब्रज भूषण शर्मा

[5] साधकों के लिएः अमृत (कबीर वाणी) – साध्वी ज्ञानानंद जी

[6] कबीर ग्रंथावली – श्यामसुन्दरदास

[7] कबीर का काव्य एवं लोक जीवन – डॉ0 उमेश सिंह

[8] संत कबीरदास की अमृतवाणी – मे0 पी सी शाबादींमठ

[9] कबीर साखी दर्पण – साध्वी ज्ञानानंद जी

[10] संत कबीर विचार दर्शन – एस.एस. गौतम

[11] कबीर के व्यक्तित्व, साहित्य और दार्शनिक विचारों की आलोचना – हजारी प्रसाद द्विवेदी

2014, RHIMRJ, All Rights Reserved

ISSN: 2349-7637 (Online)